SEMESTER – II

(Social and Political dynamics of Democracy)

CC – 09

CONTEMPORARY INDIA

(2019 - 2021)

E-Content 1

- Unit – III : Topic
  - A. Caste and Politics in Contemporary India.

Vetted by :

प्रो0 (डॉ0) सुरेंद्र कुमार

विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग

पटना विश्वविद्यालय, पटना

संपर्क : 9835463960

डॉ0 विद्यानंद विधाता

अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग

पटना विश्वविद्यालय, पटना

संपर्क : 9472084115

Caste and Politics in Contemporary India

ऐतिहासिक रूप से भारत में जाति व्यवस्था ने व्यक्तियों के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन के लिए नियामकीय आधार निर्मित किए हैं। अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था को प्रकृति, प्रस्थिति समूहों पर इसके प्रभावों, विशेष रूप से वे जो जाति संस्तरण के तल में स्थित हैं, को समझने के लिए काफी बौद्धिक प्रयास अर्पित किए और भारतीय समाज में भेदभाव जनित वंचना के सम्भावित उपचार हेतु सुझाव भी दिए। यह अध्याय जाति व्यवस्था एवं उसके आर्थिक परिणामों की अम्बेडकर की व्याख्या एवं निम्न जाति, विशेष रूप से अस्पृश्यों द्वारा सामना किए जाने वाले भेदभाव एवं वंचना के उपचार हेतु दिए गए सुझावों की विवेचना करता है।

अम्बेडकर ने यह स्वीकारा था कि जाति सामाजिक एवं आर्थिक शासन अथवा संबठन की (उत्पादन एवं वितरण का) एक व्यवस्था के रूप में आवश्यक रूप से कुछ निश्चित नियमों एवं मानकों पर आधारित है, जो अनन्य एवं भिन्न हैं। सामान्य रूप से एक जाति आधारित समाज एवं अर्थव्यवस्था वह है जिसमें समपत्ति के अधिकार, साथ ही व्यवसाय, वंशानुगत, आवश्यक एवं अन्तर्विवाही होते हैं। जाति व्यवस्था का संगठनात्मक विन्यास, व्यक्तियों के सामाजिक समूहों (जातियों) के रूप में ऐसे विभाजन पर आधारित है जिसमें प्रत्येक वैयक्तिक जाति के नागरिक, सांस्कृतिक, धार्मिक अधिकार पूर्व निर्धारित होते हैं अथवा जन्म द्वारा प्रदत्त होते हैं, और वंशानुगत बना दिए जाते हैं। साथ ही अन्तर्विवाह जाति व्यवस्था की केन्द्रीय विशेषता रहती है। नागरिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक अधिकारों का आवंटन फिर भी असमान एवं संस्तरणात्मक होता है। यह व्यवस्था सामाजिक बहिष्कार (अथवा सामाजिक एवं आर्थिक दण्डों की एक व्यवस्था) के उपकरणों के माध्यम से

सामाजिक एवं आर्थिक संगठन को प्रवर्तित करने के लिए एक नियामक यन्त्र विन्यास का भी संभरण करती है, और हिन्दू धर्म के दार्शनिक तत्वों से प्राप्त औचित्य के साथ उसे और अधिक प्रबलित करती हैं।

इन विशेषताओं का यह अर्थ होता है कि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था तीन अन्तर्सम्बन्धित सिद्धान्तों पर आधारित है, यहा (1) प्रत्येक जाति के सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक अधिकारों का जन्म पर आधारित पूर्वनिर्धारण, (2) जातियों के मध्य इन अधिकारों का असमान एवं संस्तरणात्मक (श्रेणीकृत) विभाजन, तथा (3) हिन्दू सामाजिक व्यवस्था को कायम रखने के लिए, सामाजिक एवं धार्मिक वैचारिकी द्वारा समर्थित कठोर सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक बहिष्कारवाद। अम्बेडकर के विचार में असमानता का सिद्धान्त हिन्दू समाज व्यवस्था का कोष बीज, हृदय है। महत्वपूर्ण बात यह है कि हिन्दू धर्म के दार्शनिक तत्व भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। यह हिन्दू धर्म में कानूनी दर्शन (कानून) एवं नैतिक दर्शन (नैतिकता) के मध्य कोई अन्तर नहीं छोड़ता है। जो कानूनी है वह नैतिक भी बन जाता है। कानूनी एवं नैतिक के मध्य कोई अन्तर न होने के कारण –नैतिकता एक सामाजिक तथा सभी पर बाध्यकारी शक्ति बन जाती है (अम्बेडकर, 1987)।

हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में ''मानव अधिकारों'' की धारणा एक विशिष्ट अर्थ ले लेती है। यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने शास्त्रीय स्वरूप में हिन्दू सामाजिक व्यवस्था व्यक्ति और उसकी विशिष्टता को सामाजिक प्रयोजन के केन्द्र के रूप में मान्वता नहीं प्रदान करती हैं। हिन्दू समाज की इकाई व्यक्ति नहीं है। विवाह एवं विरासत के प्रयोजनों के अतिरिक्त परिवार को भी समाज की एक इकाई नहीं माना जाता है (तदैव : 1)। जाति व्यवस्था पर एवं क्रम स्थापन के सिद्धान्त द्वारा भी

शासित होती है, जहाँ तक अस्पृश्यों से ब्राह्मणों तक अधिकार उर्ध्वगामी क्रम में बढ़ते हैं। यह एक संस्तरणात्मक रूप से पंक्तियों के मध्य लिखी व्यवस्था है। इस ढांचे के अंतर्गत, जातियाँ कलात्मक रूप से एक–दूसरे के साथ पंक्तियों के मध्य इस प्रकार लिखी गई है उच्च जाति के अधिकार एवं विशेषाधिकार निम्न जातियों, विशेषकर अस्पृश्यों, की निर्योग्यताएं बन जाती हैं। इस अर्थ में अम्बेडकर की दृष्टि में, जाति एकल संख्या में अस्तित्व में नहीं रह सकती है। जाति केवल बहुल संख्याओं में ही अस्तित्व में रह सकती है। एक वचन प्रतिभास के रूप में जाति कोई चीज नहीं हो सकती है। कोई भी एक जाति पार्थक्य में नहीं देखी जा सकती है, और इसे केवल इस सूचीस्तम्भीय संरचना अथवा भूलभुलैया के रूप में ही समझा जा सकता है। अतः जातियों को सामाजिक शासन की ऐसी एक व्यवस्था के रूप में देखने की आवश्यकता है जो एक–दूसरे के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक सम्बन्धों को असमान मात्राओं में अन्तर्सम्बन्धित हैं। अस्पृश्यों का पार्थक्य एवं बहिष्करण (सामाजिक एवं शारीरिक) भी हिन्दू समाज व्यवस्था की एक अनन्य विशेषता है। अम्बेडकर ने प्रेक्षित किया:

वर्ग अथवा सामाजिक समूह सभी समाजों के लिए सामान्य है, किन्तु जब तक ये वर्ग अथवा सामाजिक समूह पार्थक्य एवं अनन्यता का आचरण नहीं करते हैं, वे एक दूसरे के प्रति उनके सम्बन्धों में गैर–सामाजिक होते हैं, पार्थक्य एवं अनन्यता उनको समाज विरोधी तथा एक–दूसरे के प्रति विद्वेषी के प्रति विद्वेषी बना देती है (अम्बेडकर, 1987)।

उपयोगी पुस्तक

1. एस.एम.माइकल, आधुनिक भारत में दलित : दृष्टि एवं मूल्य
2. प्रसन्न कुमार चौधरी एवं श्रीकान्त, बिहार में दलित आंदोलन 1912–2000